

Chapter नवासी

कृष्ण तथा अर्जुन द्वारा ब्राह्मण-पुत्रों का

वापस लाया जाना

इस अध्याय में बताया गया है कि किस तरह भृगु मुनि ने भगवान् विष्णु की श्रेष्ठता सिद्ध की और भगवान् कृष्ण तथा अर्जुन किस तरह द्वारका में एक दुखियारे ब्राह्मण के मृत पुत्रों को फिर से वापस लाये।

बहुत काल पहले, एक बार सरस्वती नदी के तट पर ऋषियों के एक समूह में यह वार्ता छिड़ी कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीनों देवों में सबसे बड़ा कौन है। इसका पता लगाने के लिए उन्होंने भृगु मुनि को नियुक्त किया।

भृगु ने देवों की सहनशक्ति की परीक्षा करने का निश्चय किया, क्योंकि यह गुण महानता का निश्चित लक्षण है। अतएव, वे सर्वप्रथम अपने पिता ब्रह्माजी के दरबार में, उन्हें प्रणाम किये बिना ही प्रविष्ट हुए। इससे ब्रह्मा को क्रोध आ गया, किन्तु उन्होंने इस क्रोध को दबा लिया, क्योंकि भृगु उनके पुत्र थे। इसके बाद भृगु अपने बड़े भाई शिव के पास गये जिन्होंने अपने आसन से उठ कर उनका आलिंगन किया। किन्तु भृगु ने शिवजी को पथभ्रष्ट विधर्मी कहते हुए उनके आलिंगन को स्वीकार नहीं किया। ज्योंही वे अपने त्रिशूल से भृगु को मारने जा रहे थे कि देवी पार्वती ने रोक दिया और अपने

पति को शान्त किया। इसके बाद भगवान् नारायण की परीक्षा लेने भृगु वैकुण्ठ-लोक गये। भगवान् देवी लक्ष्मी की गोद में अपना सिर रखे लेटे थे, तभी उनके पास जाकर भृगु ने उनकी छाती पर लात मारी। किन्तु क्रुद्ध होने की बजाय भगवान् तथा उनकी प्रेयसी, दोनों ने खड़े होकर भृगु का स्वागत किया। भगवान् ने कहा, “स्वागत है। बैठ जाइये और थोड़े समय के लिए विश्राम कीजिये। हे प्रभु! हमें क्षमा करें, क्योंकि हमने आपको आते नहीं देखा।” जब भृगु ने ऋषियों की सभा में जाकर उन्हें जो कुछ हुआ था बतलाया, तो उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि विष्णु निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

एक बार, द्वारका में एक ब्राह्मण की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जो तुरन्त मर गया। ब्राह्मण अपने मृत पुत्र को राजा उग्रसेन के दरबार में ले गया और राजा को भला-बुरा कहने लगा, “इस छद्मी, ब्राह्मणों के लोभी शत्रु ने मेरे पुत्र की मृत्यु कराई है, क्योंकि इसने अपने कर्तव्यों का सही पालन नहीं किया।” इस ब्राह्मण के साथ यही दुर्घटना हर बार घटती रही और वह अपने मृत पुत्र का शरीर राज-दरबार में लाता और राजा को भला-बुरा कहता। जब उसका नौवाँ पुत्र जन्म लेते ही मर गया तो अर्जुन ने अचानक ब्राह्मण की शिकायत सुन ली, अतः उन्होंने कहा, “हे प्रभु! मैं आपकी सन्तान की रक्षा करूँगा और यदि मैं नहीं कर पाया, तो अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगा।”

कुछ काल बाद ब्राह्मणी को दसवीं बार पुत्र होने वाला था। जब अर्जुन को पता चला, तो वे प्रसूति-गृह गये और उसे बाणों के रक्षात्मक पिंजरे से घेर दिया। किन्तु अर्जुन का प्रयास व्यर्थ हुआ, क्योंकि शिशु जन्म लेते ही रोने लगा और आकाश-मार्ग में लुप्त हो गया। जब ब्राह्मण ने अर्जुन का खूब उपहास किया, तो वह योद्धा मृत्यु के देवता यमराज के घर के लिए चल पड़ा। किन्तु अर्जुन को ब्राह्मण का पुत्र वहाँ नहीं मिला और चौदहों लोकों को छान मारने पर भी, उस शिशु का नाम-निशान भी नहीं मिल पाया।

ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा न कर पाने के कारण, अब अर्जुन पवित्र अग्नि में प्रवेश करके मरने पर तुले थे। जब वे ऐसा करने जा ही रहे थे, तो कृष्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा, “मैं तुमको ब्राह्मण के सारे पुत्र दिखलाऊँगा। तुम अपने को इस प्रकार मत कोसो।” तब भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को अपने दिव्य रथ पर चढ़ाया और दोनों ने सात द्वीपों तथा सात समुद्रों को पार किया, फिर लोकालोक पर्वतश्रेणी को

पार करते हुए गहन अंधकार के प्रदेश में प्रविष्ट हुए। चूँकि घोड़े अपना रास्ता नहीं ढूँढ़ पा रहे थे, इसलिए अंधकार को भेदने के लिए कृष्ण ने अपना ज्वलित सुदर्शन चक्र आगे-आगे भेजा। धीरे-धीरे वे कारण सागर में आये, जिसके भीतर उन्हें महाविष्णु की नगरी मिली। वहाँ उन्होंने एक हजार फनों वाले सर्प अनन्त को देखा, जिसके ऊपर महाविष्णु लेटे थे। महाप्रभु ने श्रीकृष्ण तथा अर्जुन का यह कहते हुए सत्कार किया, “मैं ब्राह्मण के पुत्रों को यहाँ, इसीलिए ले आया था, क्योंकि मैं तुम दोनों को देखना चाहता था। कृपया नर-नारायण ऋषियों के रूपों में सामान्य जनों को अपना धार्मिक व्यवहार दिखाते हुए लाभान्वित करते रहो।”

तब भगवान् कृष्ण तथा अर्जुन ने ब्राह्मण-पुत्रों को लिया और द्वारका लौट आये जहाँ, इन शिशुओं को उनके पिता को दे दिया। श्रीकृष्ण की महानता का प्रत्यक्ष अनुभव करके, अर्जुन चकित थे। उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि एकमात्र भगवान् की कृपा से कोई जीव कोई शक्ति या ऐश्वर्य प्रदर्शित कर सकता है।

श्रीशुक उवाच

सरस्वत्यास्तटे राजऋषयः सत्रमासत ।

वितर्कः समभूतेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सरस्वत्याः—सरस्वती नदी के; तटे—किनारे; राजन्—हे राजा (परीक्षित); ऋषयः—ऋषिगण; सत्रम्—वैदिक यज्ञ; आसत—कर रहे थे; वितर्कः—वाद-विवाद; समभूत्—उठ खड़ा हुआ; तेषाम्—उनमें से; त्रिषु—तीन; अधीशेषु—मुख्य स्वामियों में से; कः—कौन; महान्—सबसे बड़ा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, एक बार जब सरस्वती नदी के तट पर ऋषियों का समूह वैदिक यज्ञ कर रहा था, तो उनके बीच यह वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ कि तीन मुख्य देवों में से सर्वश्रेष्ठ कौन है।

तात्पर्य : तीन मुख्य देव हैं—विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव।

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ।

तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभजगाद्ब्रह्मणः सभाम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तस्य—इसके विषय में; जिज्ञासया—जानने की इच्छा से; ते—वे; वै—निस्सन्देह; भृगुम्—भृगु मुनि को; ब्रह्म-सुतम्—ब्रह्मा के पुत्र; नृप—हे राजा; तत्—यह; ज्ञप्त्यै—दूँढ़ निकालने के लिए; प्रेषयाम् आसुः—उन्होंने भेजा; सः—वह; अभ्यगात्—गया; ब्रह्मणः—ब्रह्मा के; सभाम्—दरबार में।

हे राजन्, इस प्रश्न का हल दूँढ़ निकालने के इच्छुक ऋषियों ने ब्रह्मा के पुत्र भृगु को उत्तर खोजने के लिए भेजा। वे सर्वप्रथम, अपने पिता ब्रह्मा के दरबार में गये।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद बतलाते हैं: “ऋषियों ने जो योजना बनाई वह यह थी कि प्रमुख देवताओं के सद्गुणों की परीक्षा करने के लिए भृगु को भेजा जाय।” सतोगुणी व्यक्ति में सहिष्णुता तथा समता जैसे सद्गुण पाये जाते हैं, किन्तु रजोगुणी तथा तमोगुणी तुरन्त ही क्रुद्ध हो उठते हैं।

न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ।

तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रच्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; तस्मै—उस (ब्रह्मा) को; प्रह्वणम्—नमस्कार करना; स्तोत्रम्—स्तुति; चक्रे—की; सत्त्व—सतोगुण में स्थिति; परीक्षया—परीक्षण करने के उद्देश्य से; तस्मै—उसको; चुक्रोध—क्रुद्ध हो गया; भगवान्—प्रभु; प्रच्वलन्—जल उठे; स्वेन—अपने ही; तेजसा—भावावेश से।

यह परीक्षा लेने के लिए कि ब्रह्माजी कहाँ तक सतोगुण को प्राप्त हैं, भृगु ने न तो उन्हें प्रणाम किया न ही स्तुतियों द्वारा उनका महिमा-गान किया। अतः वे अपने ही भावावेश से जल-भुन कर भृगु पर क्रुद्ध हो उठे।

स आत्मन्युत्थितम्मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ।

अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणात्मभूः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

सः—उस; आत्मनि—अपने भीतर; उत्थितम्—उठे हुए; मन्युम्—क्रोध; आत्म-जाय—अपने पुत्र के प्रति; आत्मना—अपनी बुद्धि से; प्रभुः—प्रभु ने; अशीशमत्—दमन कर लिया; यथा—जिस तरह; वह्निम्—आग; स्व—अपने; योन्या—उद्गम से; वारिणा—जल से; आत्म-भूः—अपने से उत्पन्न ब्रह्मा।

यद्यपि उनके हृदय के भीतर अपने पुत्र के प्रति क्रोध उठ रहा था, किन्तु ब्रह्माजी ने अपनी बुद्धि के प्रयोग से, उसे वैसे ही दबा लिया, जिस तरह अग्नि अपने ही उत्पाद जल से बुझ जाती है।

तात्पर्य : कभी कभी ब्रह्माजी रजोगुण के संसर्ग से प्रभावित हो उठते हैं। लेकिन आदि कवि होने से अर्थात् सर्वप्रथम जन्मे तथा सर्वोच्च विद्वान होने से, जब उनका क्रोध उनके मन को विचलित करने

लगता है, तो वे विवेकपूर्ण आत्म-परीक्षण द्वारा उस पर नियंत्रण प्राप्त कर लेते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में उन्होंने अपने आपको याद दिलाया कि भृगु तुम्हारा ही पुत्र है। इस तरह इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी यह दृष्टान्त देते हैं कि ब्रह्मा के ही अंश (पुत्र) ने उनके क्रोध को उसी तरह शान्त कर दिया, जिस तरह पुरातन सृष्टि में अग्नि से ही उत्पन्न हुआ जल अग्नि को बुझा देता है।

ततः कैलासमगमत्स तं देवो महेश्वरः ।
परिरब्धुं समारेभ उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; कैलासम्—कैलास पर्वत पर; अगमत्—गया; सः—वह (भृगु); तम्—उसको; देवः महा-ईश्वरः—शिव ने; परिरब्धुम्—आलिंगन करने के लिए; समारेभे—प्रयास किया; उत्थाय—उठ कर; भ्रातरम्—अपने भाई को; मुदा—हर्षपूर्वक।

तब भृगु कैलास पर्वत गये। वहाँ पर शिवजी उठ खड़े हुए और अपने भाई का आलिंगन करने प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता में अपने परिवार के सदस्यों का उचित रीति से स्वागत करना, विशेष रूप से जब उन्हें बहुत समय से न देखा हो, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। योग्य पुत्र को चाहिए कि अपने पिता का आदर करे, छोटे भाई को चाहिए कि बड़े भाई का आदर करे और बड़े भाई को चाहिए कि बदले में छोटे भाई पर स्नेह प्रदर्शित करे।

नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ।
शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥
पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्वयामास तं गिरा ।
अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

न ऐच्छत्—उसने इसे (आलिंगन को) नहीं स्वीकारा; त्वम्—तुम; असि—हो; उत्पथ-गः—(धर्म) पथ का उल्लंघन करने वाले; इति—इस तरह कहते हुए; देवः—देवता (शिव); चुकोप ह—क्रुद्ध हो गये; शूलम्—अपना त्रिशूल; उद्यम्य—उठाकर; तम्—उस (भृगु) को; हन्तुम्—मार डालने के लिए; आरेभे—उद्यत; तिग्म—भयानक; लोचनः—जिसकी आँखें; पतित्वा—गिरते हुए; पादयोः—(शिव के) पैरों पर; देवी—देवी ने; सान्त्वयाम् आस—शान्त किया; तम्—उसको; गिरा—शब्दों से; अथ उ—तब; जगाम—(भृगु) चला गया; वैकुण्ठम्—वैकुण्ठ नामक आध्यात्मिक लोक को; यत्र—जहाँ; देवः जनार्दनः—भगवान् जनार्दन (विष्णु)।

किन्तु भृगु ने यह कहते हुए उनके आलिंगन का त्याग कर दिया कि आप तो विपथगामी हैं। इस पर शिवजी क्रुद्ध हो उठे और उनकी आँखें भयावने रूप से जलने लगीं। उन्होंने अपना त्रिशूल उठा लिया और भृगु को जान से मारने ही वाले थे कि देवी उनके चरणों पर गिर पड़ीं

और उन्होंने उन्हें शान्त करने के लिए कुछ शब्द कहे। तब भृगु उस स्थान से चल पड़े और वैकुण्ठ गये, जहाँ भगवान् जनार्दन निवास करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “कहा जाता है कि कोई अपराध शरीर से, मन से या फिर वाणी से किया जाता है। भृगु मुनि ने ब्रह्मा के प्रति, जो पहला अपराध किया था वह मन से किया गया अपराध था। उन्होंने दूसरा अपराध शिवजी के प्रति वाणी से किया, जिसमें उन्होंने शिवजी का अपमान करते हुए उनकी गन्दी आदतों की आलोचना की। चूँकि शिव में तमोगुण की प्रधानता रहती है, अतएव जब उन्होंने भृगु द्वारा किया गया अपमान सुना, तो तुरन्त ही उनकी आँखें क्रोध से लाल हो उठीं। उन्होंने अनियंत्रित क्रोध के साथ अपना त्रिशूल उठा लिया और भृगु मुनि को मारने को उद्यत हो गये। उस समय शिवजी की पत्नी पार्वती वहाँ उपस्थित थीं। वे तीन गुणों के मिश्रण से बनी हुई हैं, अतएव वे त्रिगुणमयी कहलाती हैं। यहाँ पर उन्होंने शिवजी में सतोगुण का आह्वान करके स्थिति सँभाल ली।”

श्रील जीव गोस्वामी की टिप्पणी है कि यहाँ पर उल्लिखित वैकुण्ठ-लोक श्वेतद्वीप है।

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् ।
तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गतिः ।
स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ॥ ८ ॥
आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् ।
अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

शयानम्—लेटे हुए; श्रियः—लक्ष्मी की; उत्सङ्गे—गोद में; पदा—अपने पाँव से; वक्षसि—उनकी छाती पर; अताडयत्—प्रहार किया; ततः—तब; उत्थाय—उठ कर; भगवान्—भगवान्; सह लक्ष्म्या—लक्ष्मीजी समेत; सताम्—शुद्ध भक्तों के; गतिः—गन्तव्य; स्व—अपने; तल्पात्—बिस्तर से; अवरुह्या—उतर कर; अथ—तब; ननाम—नमस्कार किया; शिरसा—सिर द्वारा; मुनिम्—मुनि को; आह—उन्होंने कहा; ते—तुम्हारा; सु-आगतम्—स्वागत है; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; निषीद—बैठिये; अत्र—इस; आसने—आसन पर; क्षणम्—क्षण-भर के लिए; अजानताम्—अनजानों को; आगतान्—आये हुए; वः—तुम्हारे; क्षन्तुम्—क्षमा; अर्हथ—करना चाहिए; नः—हमको; प्रभो—हे प्रभु।

वे भगवान् के पास तक गये, जो अपना सिर अपनी प्रियतमा श्री की गोद में रख कर लेटे थे और वहाँ भृगुने उनकी छाती पर पाँव से प्रहार किया। तब भगवान् आदर सूचित करने के लिए देवी लक्ष्मी सहित उठ कर खड़े हो गये। अपने बिस्तर से उतर कर शुद्ध भक्तों के चरम लक्ष्य भगवान् ने मुनि के समक्ष अपना सिर झुकाया और उनसे कहा, “हे ब्राह्मण, आपका स्वागत है।

आप इस आसन पर बैठें और कुछ क्षण विश्राम करें। हे प्रभु, आपके आगमन पर ध्यान न देने के लिए हमें क्षमा कर दें।”

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार इस लीला के समय तक भृगु मुनि शुद्ध वैष्णव नहीं बन पाये थे अन्यथा भगवान् के साथ इतनी जल्दबाजी में काम न करते। उस समय भगवान् विष्णु न केवल विश्राम कर रहे थे, अपितु वे अपना सिर अपनी पत्नी की गोद में रख कर लेटे थे। इस स्थिति में उन पर प्रहार करना—वह भी हाथ से नहीं अपितु पाँव से प्रहार करना—भृगु के लिए इससे बुरा अन्य अपराध नहीं हो सकता था।

श्रील प्रभुपाद टीका करते हैं, “निस्सन्देह, भगवान् विष्णु परम दयालु हैं। वे भृगु मुनि की करतूत पर क्रुद्ध नहीं हुए, क्योंकि भृगु मुनि महान् ब्राह्मण थे। कभी कभी अपराध करने पर भी ब्राह्मण को क्षमा कर देना चाहिए और भगवान् विष्णु ने यही दृष्टान्त प्रस्तुत किया। तो भी यह कहा जाता है कि इस घटना के समय से ही लक्ष्मी देवी ब्राह्मणों के प्रति अधिक अनुकूल नहीं रहतीं और चूँकि लक्ष्मीजी ब्राह्मणों को वर नहीं देतीं, इसीलिए वे सामान्यतया अत्यन्त निर्धन होते हैं।”

पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ।
पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ १० ॥
अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ।
वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

पुनीहि—कृपया पवित्र करें; सह—सहित; लोकम्—मेरे लोक; माम्—मुझे; लोक—विभिन्न लोकों के; पालान्—शासकों को; च—तथा; मत्-गतान्—मेरे भक्तों को; पाद—पाँवों (को धो दिया है); उदकेन—जल से; भवतः—आप ही के; तीर्थानाम्—तीर्थस्थलों के; तीर्थ—उनकी पवित्रता; कारिणा—उत्पन्न करने वाला; अद्य—आज; अहम्—मैं; भगवन्—हे प्रभु; लक्ष्म्याः—लक्ष्मी का; आसम्—बन गये हो; एक-अन्त—एकमात्र; भाजनम्—आश्रय; वत्स्यति—निवास करेगी; उरसि—छाती पर; मे—मेरी; भूतिः—लक्ष्मी; भवत्—आपके; पाद—पाँव से; हत—समूल नष्ट किये गये; अंहसः—जिसके पापों के फल।

“कृपा करके, अपने पाँवों के प्रक्षालित जल को मुझे देकर मुझे, मेरे धाम तथा मेरे लोकपालक भक्तों के राज्यों को पवित्र कीजिये। निस्सन्देह यही पवित्र जल तीर्थस्थानों को पवित्र बनाता है। हे प्रभु, आज मैं लक्ष्मी का एकमात्र आश्रय बन गया हूँ। वह मेरी छाती पर निवास करने के लिए सहमत होंगी, क्योंकि आपके पाँव ने इसके सारे पापों को दूर कर दिया है।”

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद अपनी टीका में आगे कहते हैं, “कलियुग के तथाकथित ब्राह्मण कभी कभी अत्यन्त गर्व करते हैं कि वे भगवान् विष्णु की छाती को अपने पाँव से छू सकते हैं। किन्तु जब भृगु मुनि ने अपने पाँव से भगवान् विष्णु की छाती का स्पर्श किया, तो वह बात भिन्न थी, क्योंकि सबसे बड़ा अपराध होते हुए भी अत्यन्त वदान्य होने के कारण भगवान् विष्णु ने इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया।”

श्रीमद्भागवत के कुछ संस्करणों के श्लोक ११ तथा १२ के बीच निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है, जिसे श्रील प्रभुपाद ने भी दसवें स्कंध की अपनी संक्षिप्त टीका भगवान् श्रीकृष्ण में सम्मिलित कर लिया है—

अतीवकोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।

इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥

“ [भगवान् ने ब्राह्मण भृगु से कहा], ‘हे महान् मुनि! आपके चरण निस्सन्देह अतीव कोमल हैं’ : यह कहते हुए भगवान् विष्णु अपने हाथों से ब्राह्मण के चरण दबाने लगे।”

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा ।

निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; ब्रुवाणे—कहने पर; वैकुण्ठे—भगवान् विष्णु के; भृगुः—भृगु; तत्—उस; मन्द्रया—गम्भीर; गिरा—वाणी से; निर्वृतः—प्रसन्न हुए; तर्पितः—तुष्ट; तूष्णीम्—चुप था; भक्ति—भक्ति से; उत्कण्ठः—भावविह्वल; अश्रु—आँसू; लोचनः—जिसकी आँखों में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् वैकुण्ठ द्वारा कहे गये गम्भीर शब्दों को सुन कर भृगु संतुष्ट तथा प्रसन्न हो उठे। वे भक्तिमय आनन्द से विह्वल होकर निःशब्द हो गए और उनकी आँखें अश्रुओं से भर आईं।

तात्पर्य : भृगु भगवान् की प्रशंसा नहीं कर सके, क्योंकि आनन्द के आँसुओं से उनका गला भर आया था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के मत से भृगु मुनि को आक्रामक व्यवहार के लिए भला-बुरा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इस दिव्य लीला में उनकी भूमिका भगवान् द्वारा नियोजित थी।

पुनश्च सत्रमात्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ।
स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुवर्णयत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पुनः—फिर; च—तथा; सत्रम्—यज्ञ तक; मात्रज्य—जाकर; मुनीनाम्—मुनियों के; ब्रह्म-वादिनाम्—वेदों के ज्ञान में दक्ष;
स्व—अपने द्वारा; अनुभूतम्—अनुभव किया गया; अशेषेण—पूर्णतया; राजन्—हे राजा (परीक्षित); भृगुः—भृगु ने;
अवर्णयत्—वर्णन किया ।

हे राजन्, तब भृगु वैदिक विद्वानों की यज्ञशाला में लौट आये और उनसे अपना सारा
अनुभव कह सुनाया ।

तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ।
भूयांसं श्रद्धधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥ १४ ॥
धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ।
ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ॥ १५ ॥
मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् ।
अकिञ्चनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ॥ १६ ॥
सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ।
भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तत्—यह; निशम्य—सुन कर; अथ—तब; मुनयः—मुनिगण; विस्मिताः—चकित; मुक्त—रहित; संशयाः—अपने संदेहों से;
भूयांसम्—सबसे महान् के रूप में; श्रद्धधुः—उन्होंने श्रद्धा व्यक्त की; विष्णुम्—विष्णु में; यतः—जिससे; शान्तिः—शान्ति;
यतः—जिससे; अभयम्—निर्भयता; धर्मः—धर्म; साक्षात्—साक्षात् रूप में; यतः—जिससे; ज्ञानम्—ज्ञान; वैराग्यम्—विरक्ति;
च—तथा; तत्—यह (ज्ञान); अन्वितम्—समेत; ऐश्वर्यम्—योगशक्ति (योगाभ्यास द्वारा प्राप्त); च—तथा; अष्टधा—आठ
प्रकार की; यस्मात्—जिससे; यशः—उनका यश; च—भी; आत्म—मन का; मल—दूषण; अपहम्—दूर करने वाला;
मुनीनाम्—मुनियों के; न्यस्त—जिन्होंने त्याग दिया है, त्यक्त; दण्डानाम्—हिंसा; शान्तानाम्—शान्त; सम—समभाव;
चेतसाम्—मनों वाले; अकिञ्चनानाम्—स्वार्थरहित; साधूनाम्—सन्त स्वभाव के; यम्—जिसको; आहुः—वे कहते हैं;
परमाम्—परम; गतिम्—लक्ष्य; सत्त्वम्—सतोगुण; यस्य—जिसका; प्रिया—प्रिय; मूर्तिः—स्वरूप; ब्राह्मणाः—ब्राह्मणजन;
तु—तथा; इष्ट—पूजित; देवताः—अर्चाविग्रह; भजन्ति—वे पूजा करते हैं; अनाशिषः—बिना किसी कामना के; शान्ताः—
आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त कर चुके; यम्—जिसको; वा—निस्सन्देह; निपुण—चतुर; बुद्धयः—जिसकी बुद्धि की क्षमताएँ ।

भृगु के विवरण को सुन कर चकित हुए मुनियों के सारे सन्देह दूर हो गये और वे आश्चस्त
हो गये कि विष्णु सबसे बड़े देव हैं। उन्हीं से शान्ति, निर्भयता, धर्म के अनिवार्य सिद्धान्त, ज्ञान
सहित वैराग्य, आठों योगशक्तियाँ तथा मन के सारे कल्मषों को धो डालने वाली उनकी महिमा
प्राप्त होती है। वे शान्त तथा समभाव वाले स्वार्थरहित निपुण उन मुनियों के परम गन्तव्य जाने
जाते हैं, जिन्होंने सारी हिंसा का परित्याग कर दिया है। उनका सबसे प्रिय स्वरूप शुद्ध सत्त्वमय
है और ब्राह्मण उनके पूज्य देव हैं। तीव्र बुद्धि वाले व्यक्ति, जिन्होंने आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त कर
ली है, निःस्वार्थ भाव से उनकी पूजा करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् की भक्ति करने पर मनुष्य को बिना किसी विशेष प्रयास के दिव्य ज्ञान तथा इन्द्रिय-तृप्ति से विरक्ति प्राप्त हो जाती है। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के ग्यारहवें स्कन्ध (११.२.४२) में कहा गया है—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।

प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥

“जिसने भगवान् की शरण ग्रहण कर ली है उसे भक्ति, भगवान् का प्रत्यक्ष अनुभव तथा अन्य बातों से विरक्ति—ये तीनों एकसाथ मिल जाते हैं, जिस तरह कि भोजन करने में व्यस्त व्यक्ति को हर कौर से अधिकाधिक आनन्द, पोषण तथा भूख से राहत एकसाथ प्राप्त होते हैं।” इसी प्रकार प्रथम स्कन्ध (१.२.७) में श्रील सूत गोस्वामी कहते हैं—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम् ॥

“भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करने से मनुष्य को तुरन्त ही अहैतुक ज्ञान तथा संसार से विरक्ति प्राप्त होती है।”

अपनी माता देवहूति को उपदेश देते हुए भगवान् श्री कपिल सुझाव रखते हैं कि योग की आठ प्रकार की शक्तियाँ भक्ति का समकालिक फल भी हैं—

अथो विभूतिं मम मायाविनस्ताम्

ऐश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम् ।

श्रियं भागवतीं वास्पृहयन्ति भद्रां

परस्य मे तेऽश्नुवते हि लोके ॥

“चूँकि मेरा भक्त मेरे चिन्तन में पूर्णतया लीन रहता है, इसलिए उसे सत्यलोक जैसे उच्च लोकों में भी प्राप्य सर्वोच्च वर की इच्छा नहीं होती। वह न तो योग से प्राप्त होने वाली अष्ट भौतिक सिद्धियों की इच्छा रखता है, न ही भगवद्धाम जाना चाहता है। इन सबकी इच्छा न रखते हुए भी मेरा भक्त इसी जीवन में सारे प्रदत्त वरों का भोग करता है।” (*भागवत* ३.२५.३७)

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती संकेत करते हैं कि श्लोक १६ में तीन प्रकार के ब्रह्मवादियों के नाम

गिनाये गये हैं—मुनि, शान्त तथा साधु। ये तीनों महत्त्व की दृष्टि से क्रमशः वे व्यक्ति हैं, जो मुक्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं, जिन्होंने मुक्ति पा ली है तथा जो भगवान् विष्णु की शुद्ध भक्ति में लगे हैं।

त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ।

गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

त्रि-विध—तीन प्रकार के; आकृतयः—स्वरूप; तस्य—उसके; राक्षसाः—अज्ञानी प्रेत; असुराः—असुर; सुराः—तथा देवतागण; गुणिन्याः—गुणों से युक्त; मायया—उनकी भौतिक शक्ति से; सृष्टाः—उत्पन्न; सत्त्वम्—सतोगुण; तत्—उनमें से; तीर्थ—जीवन में सफलता के; साधनम्—प्राप्ति के साधन।

भगवान् तीन प्रकार के व्यक्त प्राणियों में विस्तार करते हैं—ये हैं राक्षस, असुर तथा देवता।

ये तीनों ही भगवान् की भौतिक शक्ति से उत्पन्न हैं और उसके गुणों से बद्ध हैं। किन्तु इन तीन गुणों में से सतोगुण ही जीवन की अन्तिम सफलता प्राप्त करने का साधन है।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद ने लिखा है, “अनेक प्रकार के लोग हैं, जिनमें विभिन्न भौतिक गुण पाये जाते हैं। जो तमोगुणी हैं, वे राक्षस कहलाते हैं; जो रजोगुणी हैं, वे असुर कहलाते हैं और जो सतोगुणी हैं, वे सुर अर्थात् देवता कहलाते हैं। मनुष्यों की ये तीन श्रेणियाँ भगवान् के निर्देशन में भौतिक प्रकृति द्वारा उत्पन्न की जाती है, किन्तु जो सतोगुणी हैं, उन्हें भगवद्धाम वापस जाने का अवसर अधिक है।”

श्रीशुक उवाच

इत्थं सारस्वता विप्रा नृणाम्संशयनुत्तये ।

पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार से; सारस्वताः—सरस्वती नदी के तट पर रहने वाले; विप्राः—विद्वान् ब्राह्मणों ने; नृणाम्—लोगों के; संशय—सन्देह; नुत्तये—दूर करने के लिए; पुरुषस्य—परम पुरुष के; पद-अम्भोज—चरणकमलों की; सेवया—सेवा से; तत्—उसके; गतिम्—गन्तव्य, धाम को; गतः—प्राप्त किया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : सरस्वती नदी के तट पर रहने वाले विद्वान् ब्राह्मणों ने समस्त लोगों के संशयों को दूर करने के लिए यह निष्कर्ष निकाला। तत्पश्चात् उन्होंने भगवान् के चरणकमलों की भक्ति की और वे सभी उनके धाम को प्राप्त हुए।

श्रीसूत उवाच

इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगन्ध-

पीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः ।

सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्षणम्

पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार कहने के बाद; एतत्—यह; मुनि—मुनि (वेदव्यास) के; तनय—पुत्र (शुकदेव) के; आस्य—मुख से; पद्म—कमल (सदृश); गन्ध—सुगन्धि से; पीयूषम्—अमृत; भव—भौतिक जीवन के; भय—डर को; भित्—छिन्न छिन्न करने वाला; परस्य—परम के; पुंसः—भगवान्; सु-श्लोकम्—महिमावान्; श्रवण—कानों के; पुटैः—रन्ध्रों से; पिबति—पीता है; अभीक्षणम्—निरन्तर; पान्थः—यात्री; अध्व—मार्ग पर; भ्रमण—भ्रमण करने से; परिश्रमम्—थकान; जहाति—त्याग देता है ।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : व्यासदेव मुनि के पुत्र शुकदेव गोस्वामी के मुख कमल से इस प्रकार सुगन्धित अमृत बहा। परम पुरुष का यह अद्भुत महिमा-गायन भौतिक संसार के सारे भय को नष्ट करने वाला है। जो यात्री इस अमृत को अपने कान के छेदों से निरन्तर पीता रहता है, वह सांसारिक जीवन के मार्गों पर भ्रमण करने से उत्पन्न थकान को भूल जायेगा।

तात्पर्य : श्रील शुकदेव गोस्वामी द्वारा कही गई यह कथा दो प्रकार से मूल्यवान है—जो लोग आध्यात्मिक दुर्बलता के शिकार हैं उनके मोह-रोग को अच्छा करने के लिए यह प्रभावशाली ओषधि है। और शरणागत वैष्णवों के लिए यह स्वादिष्ट तथा शक्तिवर्धक पेय है, जो श्री शुकदेव की अनुभूतियों की सुगन्धि से सुगन्धित है।

श्रीशुक उवाच

एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ।

जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एक बार; द्वारवत्याम्—द्वारका में; तु—और; विप्र—एक ब्राह्मण की; पत्न्याः—पत्नी के; कुमारकः—शिशु पुत्र; जात—उत्पन्न; मात्रः—एकमात्र; भुवम्—पृथ्वी को; स्पृष्ट्वा—छूते ही; ममार—मर गया; किल—निस्सन्देह; भारत—हे भरतवंशी (परीक्षित महाराज) ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक बार द्वारका में एक ब्राह्मण की पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया किन्तु, हे भारत, यह नवजात शिशु पृथ्वी का स्पर्श करते ही मर गया।

तात्पर्य : इस अध्याय में भगवान् विष्णु का यशोगान भगवान् के रूप में किया गया। अब शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के अद्वितीय दिव्य गुणों को प्रकाश में लाने वाली एक अन्य लीला का वर्णन करके, उन्हें भगवान् के तुल्य बताने जा रहे हैं।

विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ।
इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

विप्रः—ब्राह्मण ने; गृहीत्वा—लेकर; मृतकम्—शव को; राज—राजा (उग्रसेन) के; द्वारि—दरवाजे पर; उपधाय—प्रस्तुत करके; सः—उसने; इदम्—यह; प्रोवाच—कहा; विलपन्—शोक करते हुए; आतुरः—विक्षुब्ध; दीन—दुखियारा; मानसः—मन वाला ।

ब्राह्मण ने उस मृत शरीर को ले जाकर राजा उग्रसेन के दरबार के द्वार पर रख दिया । फिर क्षुब्ध तथा दीन-हीन भाव से शोक-विलाप करता, वह इस प्रकार बोला ।

ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ।
क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात्पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म—ब्राह्मणों के विरुद्ध; द्विषः—द्वेषपूर्ण; शठ—शैतान; धियः—बुद्धि वाला; लुब्धस्य—लोभी; विषय-आत्मनः—इन्द्रिय-तृप्ति में लिप्त रहने वाला; क्षत्र-बन्धोः—अयोग्य क्षत्रिय का; कर्म—कर्तव्य पूरा करने में; दोषात्—त्रुटि से; पञ्चत्वम्—मृत्यु को; मे—मेरा; गतः—प्राप्त हुआ; अर्भकः—पुत्र ।

[ब्राह्मण ने कहा] : ब्राह्मणों के इस शठ, लालची शत्रु तथा इन्द्रिय-सुख में लिप्त रहने वाले अयोग्य शासक द्वारा, अपने कर्तव्यों को सम्पन्न करने में हुई, किसी त्रुटि के कारण मेरे पुत्र की मृत्यु हुई है ।

तात्पर्य : यह मानकर कि ब्राह्मण ने स्वयं कुछ ऐसा नहीं किया, जिससे उसके पुत्र की मृत्यु हुई है, उसने राजा उग्रसेन को इसके लिए दोषी ठहराना उचित समझा वैदिक सामाजिक पद्धति में राजा को उसके राज्य में घटने वाली प्रत्येक अच्छी या बुरी बात के लिए उत्तरदायी माना जाता है यहाँ तक कि प्रजातंत्र में भी किसी समूह या प्रायोजना का भार सँभालने वाले प्रबन्धक को किसी दोष के लिए स्वयं उत्तरदायी होना पड़ता है न अपने अधीस्थों या अपने से वरिष्ठों पर आरोप लगाने का प्रयास करने से काम नहीं चलता ।

हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् ।
प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

हिंसा—हिंसा; विहारम्—जिसका खिलवाड़; नृ-पतिम्—इस राजा को; दुःशीलम्—दुष्ट; अजित—अजेय; इन्द्रियम्—जिसकी इन्द्रियाँ; प्रजाः—नागरिक जन; भजन्त्यः—सेवा करते हुए; सीदन्ति—कष्ट उठाते हैं; दरिद्राः—निर्धन; नित्य—सदैव; दुःखिताः—दुखी।

हिंसा में सुख पाने वाले तथा अपनी इन्द्रियों को वश में न कर सकने वाले दुष्ट राजा की सेवा करने वाले नागरिकों को निरन्तर निर्धनता तथा दुख का सामना करना पड़ता है।

एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ।

विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इसी प्रकार से; द्वितीयम्—दुबारा; विप्र-ऋषिः—बुद्धिमान ब्राह्मण; तृतीयम्—तिबारा; तु—तथा; एवम् एव च—इसी प्रकार से; विसृज्य—छोड़ कर (अपने पुत्र को); सः—वह; नृप-द्वारि—राजा के दरवाजे पर; ताम्—उसी; गाथाम्—गीत को; समगायत—गाता रहा।

उस बुद्धिमान ब्राह्मण को अपने दूसरे तथा तीसरे पुत्र के साथ भी यही दुख भोगना पड़ा प्रत्येक बार वह अपने मृत पुत्र का शरीर राजा के दरवाजे पर छोड़ जाता और वही शोक-गीत गाता।

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवान्तिके ।

परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥ २६ ॥

किं स्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः ।

राजन्यबन्धुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस (विलाप) को; अर्जुनः—अर्जुन ने; उपश्रुत्य—सुन कर; कर्हिचित्—एक बार; केशव—भगवान् कृष्ण के; अन्तिके—निकट; परेते—मृत; नवमे—नौवें; बाले—शिशु; ब्राह्मणम्—ब्राह्मण से; समभाषत—कहा; किम् स्वित्—क्या; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; त्वत्—तुम्हारे; निवासे—घर पर; इह—यहाँ; न अस्ति—नहीं है; धनुः-धरः—हाथ में धनुष लिए; राजन्य-बन्धुः—राज-परिवार का पतित सदस्य; एते—ये (क्षत्रिय); वः—निस्सन्देह; ब्राह्मणाः—ब्राह्मणों (की तरह); सत्रे—प्रमुख यज्ञ में; आसते—उपस्थित हैं।

जब उस ब्राह्मण का नौवाँ पुत्र मरा, तो भगवान् केशव के निकट खड़े अर्जुन ने उस ब्राह्मण के विलाप को सुना अतः अर्जुन ने ब्राह्मण से कहा, “हे ब्राह्मण, क्या बात है? क्या यहाँ पर कोई राजसी दरबार का निम्न सदस्य अर्थात् क्षत्रिय-बन्धु नहीं है, जो कम-से-कम अपने हाथ में धनुष लेकर आपके घर के सामने खड़ा रहे? ये क्षत्रिय ऐसा आचरण कर रहे हैं, मानो यज्ञ में व्यर्थ ही लगे हुए ब्राह्मण हों।

धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ।
ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुम्भराः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

धन—सम्पत्ति; दार—पत्नी; आत्मज—तथा पुत्रों से; अपृक्ताः—पृथक्; यत्र—जिस (स्थिति) में; शोचन्ति—शोक करते हैं; ब्राह्मणाः—ब्राह्मणजन; ते—वे; वै—निस्सन्देह; राजन्य-वेषेण—राजाओं के वेश में; नटाः—अभिनेता; जीवन्ति—जीते हैं; असुम्-भराः—अपना पेट पालते हुए।

“जिस राज्य में ब्राह्मण अपनी नष्ट हुई सम्पत्ति, पत्नियों तथा सन्तानों के लिए शोक करते हैं, उसके शासक निरे वञ्चक हैं, जो अपना उदर-पोषण करने के लिए राजाओं का अभिनय करते हैं।”

अहं प्रजाः वां भगवन्नक्षिष्ये दीनयोरिह ।
अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; प्रजाः—सन्तान; वाम्—तुम दोनों की (पति-पत्नी की); भगवन्—हे प्रभु; नक्षिष्ये—रक्षा करूँगा; दीनयोः—दीन; इह—इस मामले में; अनिस्तीर्ण—पूरा न कर पाने पर; प्रतिज्ञः—वायदा (प्रतिज्ञा); अग्निम्—अग्नि में; प्रवेक्ष्ये—प्रविष्ट करूँगा; हत—विनष्ट; कल्मषः—जिसके कल्मष।

“हे प्रभु, मैं ऐसे अत्यन्त दुखियारे आप तथा आपकी पत्नी की सन्तान की रक्षा करूँगा यदि मैं यह वचन पूरा न कर सका, तो मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए अग्नि में प्रवेश करूँगा।”

तात्पर्य : वीर अर्जुन अपना वचन पूरा न कर सकने की लज्जा को सहन नहीं कर सका जैसाकि भगवद्गीता (२.३४) में कृष्ण ने कहा है—*सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणाद् अतिरिच्यते*—सम्मानित व्यक्ति के लिए अनादर मृत्यु से भी बुरा है।

श्रीब्राह्मण उवाच

सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥ ३० ॥
तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ।
त्वं चिकीर्षसि बालिश्यात्तन्न श्रद्दधमहे वयम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्राह्मणः उवाच—ब्राह्मण ने कहा; सङ्कर्षणः—संकर्षण (बलराम); वासुदेवः—वासुदेव (कृष्ण); प्रद्युम्नः—प्रद्युम्न; धन्विनाम्—धनुर्धारियों के; वरः—सबसे बड़े; अनिरुद्धः—अनिरुद्ध; अप्रति-रथः—अद्वितीय रथी; न—नहीं; त्रातुम्—बचाने के लिए; शक्नुवन्ति—समर्थ थे; यत्—इतना कि; तत्—इस प्रकार; कथम्—क्यों; नु—निस्सन्देह; भवान्—आप; कर्म—

कौशल; दुष्करम्—कर पाना असम्भव; जगत्—ब्रह्माण्ड के; ईश्वरैः—ईश्वरों द्वारा; त्वम्—तुम; चिकीर्षसि—करना चाहते; बालिश्यात्—बदमाशी से; तत्—इसलिए; न श्रद्धमहे—विश्वास नहीं करते; वयम्—हम।

ब्राह्मण ने कहा : न तो संकर्षण, वासुदेव, सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर प्रद्युम्न, न अद्वितीय योद्धा अनिरुद्ध ही, मेरे पुत्रों को बचा सके तो फिर तुम क्यों ऐसा कौशल करने का मूर्खतापूर्ण प्रयास करने जा रहे हो, जिसे ब्रह्माण्ड के स्वामी भी नहीं कर सके ? हमें तुम पर विश्वास नहीं हो रहा।

श्रीअर्जुन उवाच

नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ।

अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-अर्जुनः उवाच—श्री अर्जुन ने कहा; न—नहीं; अहम्—मैं; सङ्कर्षणः—बलराम; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; न—न तो; कृष्णः—कृष्ण; कार्ष्णिः—कृष्ण का वंशज; एव च—ही; अहम्—मैं; वै—निस्सन्देह; अर्जुनः नाम—अर्जुन नाम वाला; गाण्डीवम्—गाण्डीव; यस्य—जिसका; वै—निस्सन्देह; धनुः—धनुष।

श्री अर्जुन ने कहा : हे ब्राह्मण, मैं न तो संकर्षण हूँ, न कृष्ण और न ही कृष्ण का पुत्र, प्रत्युत मैं गाण्डीव धनुष धारण करने वाला अर्जुन हूँ।

मावमंस्था मम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् ।

मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजाः प्रभो ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

मा अवमंस्थाः—मत छोटा मानो; मम—मेरा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; वीर्यम्—पराक्रम; त्रि-अम्बक—शिवजी; तोषणम्—संतुष्ट करने के लिए; मृत्युम्—मृत्यु को; विजित्य—हराकर; प्रधने—युद्ध में; आनेष्ये—वापस लाऊँगा; ते—तुम्हारी; प्रजाः—सन्तानें; प्रभो—हे स्वामी।

हे ब्राह्मण, मेरी उस क्षमता को कम न करें, जो शिवजी को भी तुष्ट करने में सफल हुई थी। हे स्वामी, मैं आपके पुत्रों को वापस ले आऊँगा, चाहे मुझे युद्ध में साक्षात् काल को ही क्यों न पराजित करना पड़े।

एवं विश्रम्भितो विप्रः फाल्गुनेन परन्तप ।

जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विश्रम्भितः—विश्वास दिलाया गया; विप्रः—ब्राह्मण; फाल्गुनेन—अर्जुन द्वारा; परम्—शत्रुओं का; तप—हे सताने वाले (परीक्षित महाराज); जगाम—गया; स्व—अपने; गृहम्—घर; प्रीतः—तुष्ट होकर; पार्थ—पृथा के पुत्र का; वीर्यम्—पराक्रम को; निशामयन्—सुनता हुआ।

हे शत्रुओं को सताने वाले, इस तरह अर्जुन द्वारा आश्चस्त किये जाने पर अर्जुन के पराक्रम

की घोषणा सुन कर तुष्ट हुआ ब्राह्मण अपने घर चला गया ।

प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ।

पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

प्रसूति—प्रसव; काले—के समय; आसन्ने—निकट होने पर; भार्यायाः—उसकी पत्नी के; द्विज—ब्राह्मण; सत्-तमः—अत्यन्त पूज्य; पाहि—रक्षा कीजिये; पाहि—रक्षा कीजिये; प्रजाम्—मेरे बच्चे की; मृत्योः—मृत्यु से; इति—इस प्रकार; आह—उसने कहा; अर्जुनम्—अर्जुन से; आतुरः—किंकर्तव्यविमूढ़ ।

जब पुनः उस पूज्य ब्राह्मण की पत्नी के बच्चा जनने वाली थी, तो वह अत्यन्त चिन्तित होकर अर्जुन के पास गया और उनसे याचना की, “कृपा करके मेरे बच्चे को मृत्यु से बचा लें, बचा लें।”

स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् ।

दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (अर्जुन); उपस्पृश्य—स्पर्श करके; शुचि—शुद्ध; अम्भः—जल; नमः-कृत्य—नमस्कार करके; महा-ईश्वरम्—शिवजी को; दिव्यानि—दैवी; अस्त्राणि—अपने प्रक्षेपास्त्रों को; संस्मृत्य—स्मरण करके; सज्यम्—धनुष की डोरी को; गाण्डीवम्—अपने धनुष गाण्डीव पर; आददे—स्थिर किया ।

शुद्ध जल का स्पर्श करके, भगवान् महेश्वर को नमस्कार करके तथा अपने दैवी अस्त्रों के लिए मंत्रों का स्मरण करके अर्जुन ने अपने धनुष गाण्डीव की डोरी चढ़ाई ।

तात्पर्य : आचार्यों ने यह इंगित किया है कि चूँकि ब्राह्मण ने भगवान् कृष्ण का अनादर किया था इसलिए अर्जुन ने बहुत ही चतुराई से शिवजी को नमस्कार किया, जिन्होंने उसे पाशुपातास्त्र के मंत्रों का प्रयोग करने की विधि बतलाई थी ।

न्यरुणत्सूतिकागारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ।

तिर्यग्ूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

न्यरुणत्—घेर दिया; सूतिका-आगारम्—सौरी (प्रसूति) गृह को; शरैः—बाणों से; नाना—विविध; अस्त्र—प्रक्षेपास्त्रों से; योजितैः—जुड़े; तिर्यक्—समतल रीति से; ऊर्ध्वम्—ऊपर; अधः—नीचे; पार्थः—अर्जुन ने; चकार—बना दिया; शर—बाणों का; पञ्जरम्—पिंजरा ।

अर्जुन ने विविध प्रक्षेपास्त्रों से लगे बाणों द्वारा उस सौरी-गृह को घेर दिया इस तरह पृथा-

पुत्र ने बाणों का एक सुरक्षात्मक पिंजरा बना कर उस गृह को ऊपर से, नीचे से तथा अगल-बगल से आच्छादित कर दिया।

ततः कुमारः सञ्जातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ।
सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; कुमारः—बालक; सञ्जातः—उत्पन्न हुआ; विप्र—ब्राह्मण की; पत्न्याः—पत्नी के; रुदन्—रोता हुआ; मुहुः—कुछ काल तक; सद्यः—सहसा; अदर्शनम् आपेदे—विलुप्त हो गया; स—सहित; शरीरः—अपने शरीर; विहायसा—आकाश से होकर।

तब ब्राह्मण की पत्नी ने बालक को जन्म दिया वह नवजात शिशु कुछ समय तक तो रोता रहा, किन्तु सहसा वह सशरीर आकाश में अदृश्य हो गया।

तदाह विप्रो विजयं विनिन्दन्कृष्णसन्निधौ ।
मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्धे क्लीबकत्थनम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब; आह—कहा; विप्रः—ब्राह्मण ने; विजयम्—अर्जुन से; विनिन्दन्—आलोचना करते हुए; कृष्ण-सन्निधौ—भगवान् कृष्ण की उपस्थिति में; मौढ्यम्—मूर्खता; पश्यत—देखो तो; मे—मेरी; यः—जो; अहम्—मैंने; श्रद्धे—विश्वास किया; क्लीब—नपुंसक की; कत्थनम्—डिंग पर।

तब उस ब्राह्मण ने भगवान् कृष्ण की उपस्थिति में अर्जुन का उपहास किया, “जरा देखो तो मैं कितना मूर्ख हूँ कि मैंने इस डिंग मारने वाले नपुंसक पर विश्वास किया।”

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ।
यस्य शेकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

न—न तो; प्रद्युम्नः—प्रद्युम्न; न—न ही; अनिरुद्धः—अनिरुद्ध; न—न; रामः—बलराम; न—नहीं; च—भी; केशवः—कृष्ण; यस्य—जिनके (बालक); शेकुः—समर्थ थे; परित्रातुम्—रक्षा करने में; कः—कौन; अन्यः—अन्य; तत्—इस परिस्थिति में; अविता—रक्षक के रूप में; ईश्वरः—समर्थ।

“जब न ही प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, राम और न ही केशव किसी व्यक्ति को बचा सकते हैं, तो भला अन्य कौन उसकी रक्षा कर सकता है?

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ।
दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

धिक्—धिक्कार है; अर्जुनम्—अर्जुन को; मृषा—झूठी; वादम्—जिसकी वाणी; धिक्—धिक्कार है; आत्म—अपनी; श्लाघिनः—प्रशंसा करने वाले की; धनुः—धनुष पर; दैव—भाग्यवश; उपसृष्टम्—लिये हुए; यः—जो; मौढ्यात्—मोहवश; आनिनीषति—वापस लाना चाहता है; दुर्मतिः—मूर्ख।

“उस झूठे अर्जुन को धिक्कार है उस आत्म-प्रशंसक के धनुष को धिक्कार है, वह इतना मूर्ख है कि वह यह सोचते हुए कि ऐसे व्यक्ति को वापस ला सकता है, जिसे विधाता ने उठा लिया है, मोहग्रस्त हो चुका है।”

एवं शपति विप्रर्षीं विद्यामास्थाय फाल्गुनः ।

ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; शपति—शाप देते हुए; विप्र-ऋषीं—ज्ञानी ब्राह्मण; विद्याम्—योगविद्या; आस्थाय—करके; फाल्गुनः—अर्जुन; ययौ—गया; संयमनीम्—संयमनी नामक स्वर्गपुरी में; असु—तुरन्त; यत्र—जहाँ; आस्ते—रहता है; भगवान् यमः—लोर्ड यमराज।

जब वह बुद्धिमान ब्राह्मण अर्जुन को भला-बुरा कह कर अपमानित कर रहा था, तो अर्जुन ने तुरन्त ही संयमनी पुरी जाने के लिए, जहाँ यमराज का वास है, योगविद्या का प्रयोग किया।

विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात्पुरीम् ।

आग्नेयीं नैरृतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ।

रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यानुदायुधः ॥ ४३ ॥

ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ।

अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

विप्र—ब्राह्मण के; अपत्यम्—बालक को; अचक्षाणः—न देखकर; ततः—वहाँ से; ऐन्द्रीम्—इन्द्र की; अगात्—गया; पुरीम्—नगरी में; आग्नेयीम्—अग्नि देव की पुरी; नैरृतीम्—मृत्यु के कनिष्ठ देवता (जो यमराज से भिन्न है) की नगरी; सौम्यम्—चन्द्र देव की नगरी; वायव्याम्—वायु देव की नगरी; वारुणीम्—वरुण देव की नगरी; अथ—तब; रसातलम्—अधोलोक; नाक-पृष्ठम्—स्वर्ग के ऊपर; धिष्ण्यानि—प्रदेश; अन्यानि—अन्य; उदायुधः—हथियार उठाये हुए; ततः—वहाँ से; अलब्ध—न पाकर; द्विज—ब्राह्मण के; सुतः—पुत्र को; हि—निस्सन्देह; अनिस्तीर्ण—पूरा न कर सकने से; प्रतिश्रुतः—वायदा किया हुआ; अग्निम्—अग्नि में; विविक्षुः—प्रवेश करने ही वाला था; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; प्रत्युक्तः—विरोध किया गया; प्रतिषेधता—विरत करने का प्रयास कर रहे।

वहाँ ब्राह्मण-पुत्र को न देखकर अर्जुन अग्नि, निर्ऋति, सोम, वायु तथा वरुण की पुरियों में गया। हाथ में हथियार तैयार रखे हुए उसने अधोलोक से लेकर स्वर्ग के ऊपर तक ब्रह्माण्ड के सारे प्रदेशों को खोज मारा। अन्त में ब्राह्मण के पुत्र को कहीं भी न पाकर, अर्जुन ने अपना वायदा पूरा न करने के कारण पवित्र अग्नि में प्रवेश करने का निश्चय किया किन्तु जब वह ऐसा

करने जा ही रहा था, तो भगवान् कृष्ण ने उसे रोक लिया और उससे निम्नलिखित शब्द कहे ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि परोक्ष में अर्जुन शिव को अपना गुरु मानता था, इसलिए उसने शिव-लोक को ढूँढ़ने की परवाह नहीं की ।

दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना ।

ये ते नः कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यन्ति ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

दर्शये—मैं दिखला दूँगा; द्विज—ब्राह्मण के; सूनून्—पुत्रों को; ते—तुमको; मा—मत; अवज्ञ—छोटा करो; आत्मानम्—अपने आपको; आत्मना—अपने मन से; ये—जो; ते—वे (आलोचक); नः—हम दोनों के; कीर्तिम्—यश; विमलाम्—निर्मल; मनुष्याः—मनुष्यगण; स्थापयिष्यन्ति—स्थापना करने जा रहे हैं ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : मैं तुम्हें ब्राह्मण के पुत्र दिखलाऊँगा, अतः तुम अपने आपको

इस प्रकार छोटा मत बनाओ । यही मनुष्य, जो अभी हमारी आलोचना करते हैं, शीघ्र ही हमारी निष्कलुष कीर्ति को स्थापित करेंगे ।

इति सम्भाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ।

दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; सम्भाष्य—वार्तालाप करके; भगवान्—भगवान्; अर्जुनेन सह—अर्जुन के साथ; ईश्वरः—ईश्वर; दिव्यम्—दिव्य; स्व—अपने; रथम्—रथ पर; आस्थाय—चढ़ कर; प्रतीचीम्—पश्चिम की; दिशम्—दिशा में; आविशत्—प्रविष्ट हुआ ।

अर्जुन को इस प्रकार सलाह देकर भगवान् ने अर्जुन को अपने दैवीरथ में बैठाया और वे

दोनों एकसाथ पश्चिम दिशा की ओर रवाना हो गये ।

सप्त द्वीपान्ससिन्धुंश्च सप्त सप्त गिरीनथ ।

लोकालोकं तथातीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

सप्त—सात; द्वीपान्—द्वीपों; स—सहित; सिन्धून्—समुद्रों; च—तथा; सप्त सप्त—सात सात; गिरीन्—पर्वतों को; अथ—तब; लोक-अलोकम्—अंधकार से प्रकाश को पृथक् करने वाली पर्वत माला को; तथा—भी; अतीत्य—लाँघ कर; विवेश—प्रविष्ट हुआ; सु-महत्—विशाल; तमः—अंधकार ।

भगवान् का रथ मध्यवर्ती ब्रह्माण्ड के सात द्वीपों के ऊपर से गुजरा, जिनके अपने अपने

समुद्र तथा सात सात मुख्य पर्वत थे । तब उस रथ ने लोकालोक सीमा पार की और पूर्ण अंधकार के विशाल क्षेत्र में प्रवेश किया ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण में लिखा है, “कृष्ण इन सारे लोकों से होते हुए ब्रह्माण्ड के आवरण में जा पहुँचे। श्रीमद्भागवत में इस आवरण को महत्-अंधकार कहा गया है। यह पूरा भौतिक संसार अंधकारमय कहा जाता है। खुले भाग में सूर्य-प्रकाश रहता है, अतएव वह प्रकाशित रहता है, किन्तु सूर्य-प्रकाश की अनुपस्थिति के कारण, आवरण स्वाभाविक रूप से अंधकारमय रहता है।”

तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ।

तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥

तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ।

सहस्रादित्यसङ्काशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस स्थान पर; अश्वाः—घोड़े; शैब्य-सुग्रीव-मेघपुष्प-बलाहकाः—शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक नाम वाले; तमसि—अंधकार में; भ्रष्ट—भ्रष्ट; गतयः—अपना मार्ग; बभूवुः—हो गये; भरत-ऋषभ—हे भारतों मेंश्रेष्ठ; तान्—उनको; दृष्ट्वा—देखकर; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; महा—परम; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईश्वरः—स्वामी; सहस्र—एक हजार; आदित्य—सूर्य; सङ्काशम्—के सदृश; स्व—अपने; चक्रम्—चक्र को; प्राहिणोत्—भेजा; पुरः—आगे।

उस अंधकार में रथ के शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक नामक घोड़े अपना मार्ग भटक गये। हे भारत-श्रेष्ठ, उन्हें इस अवस्था में देखकर, योगेश्वरों के भी परम स्वामी भगवान् कृष्ण ने अपने रथ के आगे, अपने सुदर्शन चक्र को भेज दिया। वह चक्र सैकड़ों सूर्यों की तरह चमक रहा था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक के विषय में निम्नलिखित अन्तर्दृष्टि दी है। भगवान् कृष्ण के घोड़े भगवान् की धरा-लीलाओं में भाग लेने के लिए वैकुण्ठ से आये थे। चूँकि भगवान् स्वयं सीमित मनुष्य होने का अभिनय कर रहे थे, अतएव उनके घोड़े भी संभ्रमित होने का अभिनय कर रहे थे, ताकि उन लोगों के लिए जो एक दिन इस लीला को सुनेंगे, इस दृश्य की नाटकीयता में वृद्धि हो सके।

तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्

विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ।

मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं

गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तमः—अंधकार; सु—अत्यन्त; घोरम्—भयावह; गहनम्—घना; कृतम्—भौतिक सृष्टि की अभिव्यक्ति; महत्—महान्; विदारयत्—चीरते हुए; भूरि-तरेण—अत्यन्त विस्तृत; रोचिषा—तेज से; मनः—मन की; जवम्—गति वाले; निर्विशे—प्रविष्ट हुए; सुदर्शनम्—सुदर्शन चक्र; गुण—डोरी से; च्युतः—छोड़ा गया; राम—भगवान् रामचन्द्र का; शरः—बाण; यथा—जिस तरह; चमूः—सेना पर।

भगवान् का सुदर्शन चक्र अपने प्रज्वलित तेज के साथ अंधकार में प्रविष्ट हुआ। मन की गति से आगे बढ़ते हुए उसने आदि पदार्थ से विस्तीर्ण भयावह घने अंधकार को उसी तरह काट दिया, जिस तरह भगवान् राम के धनुष से छूटा तीर उनके शत्रु की सेना को काटता हुआ निकल जाता है।

द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः

परं परं ज्योतिरनन्तपारम् ।

समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः

प्रताडिताक्षो पिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

द्वारेण—मार्ग से; चक्र—सुदर्शन चक्र; अनुपथेन—पीछा करता; तत्—वह; तमः—अंधकार; परम्—परे; परम्—दिव्य; ज्योतिः—प्रकाश; अनन्त—असीम; पारम्—जिसका विस्तार; समश्नुवानम्—सर्वव्यापी; प्रसमीक्ष्य—देखकर; फाल्गुनः—अर्जुन; प्रताडित—पीड़ित; अक्षः—आँखों वाला; अपिदधे—बन्द कर लीं; अक्षिणी—अपनी आँखें; उभे—दोनों।

सुदर्शन चक्र के पीछे-पीछे जाता हुआ, रथ अंधकार को पार करके सर्वव्यापी ब्रह्मज्योति के अनन्त आध्यात्मिक प्रकाश में जा पहुँचा। ज्योंही अर्जुन ने इस चमचमाते तेज को देखा, उसकी आँखें दुखने लगीं, अतः उसने उन्हें बन्द कर लिया।

तात्पर्य : ब्रह्माण्ड के आठों संकेन्द्रित आवरणों को क्रमशः भेदते हुए सुदर्शन चक्र कृष्ण के रथ को असीम आत्मतेजवान वैकुण्ठ-लोक के वायुमंडल में ले गया। श्रीकृष्ण तथा अर्जुन द्वारा वैकुण्ठ-लोक की यह यात्रा श्री हरिवंश में भी वर्णित है, जहाँ भगवान् अपने साथी से यह कहते हैं—

ब्रह्मतेजोमयं दिव्यं महत् यद् दृष्टवान् असि

अहं स भरतश्रेष्ठ मत्तेजस्तत् सनातनम् ॥

“हे भारत-श्रेष्ठ! तुमने जिस ब्रह्मतेज के दिव्य प्रसार को देखा है, वह मैं ही हूँ। यह मेरा ही नित्य तेज है।”

प्रकृतिः सा मम परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी

तां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योगविदुत्तमाः ॥

“यह मेरी व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों ही प्रकार की नित्य आध्यात्मिक शक्तियों से युक्त है। इस जगत के सर्वश्रेष्ठ योगी इसके भीतर प्रवेश करते हैं और मुक्त हो जाते हैं।”

सा सांख्यानां गतिः पार्थ योगिनां च तपस्विनाम्

तत्परं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत्

ममैव तद् घनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत ॥

“हे पार्थ! यह सांख्य अनुयायियों के साथ साथ योगियों तथा तपस्वियों का भी परम लक्ष्य है। सम्पूर्ण सृजित जगत की विविधता को प्रकट करने वाला यही परब्रह्म है। हे भारत! तुम इस ब्रह्मज्योति को मेरा केन्द्रीभूत साकार तेज समझो।”

ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता

बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ।

तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं

भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

ततः—वहाँ से; प्रविष्टः—प्रवेश किया; सलिलम्—जल में; नभस्वता—वायु द्वारा; बलीयसा—शक्तिशाली; एजत्—हिलाया; बृहत्—विशाल; ऊर्मि—लहरें; भूषणम्—जिसके आभूषण; तत्र—वहाँ पर; अद्भुतम्—विचित्र; वै—निस्सन्देह; भवनम्—घर; द्युमत्—तमम्—अत्यधिक तेजयुक्त; भ्राजत्—चमकते हुए; मणि—मणियों से युक्त; स्तम्भ—ख भों के; सहस्र—हजारों; शोभितम्—सुन्दर लग रहे।

उस क्षेत्र से वे जलराशि में प्रविष्ट हुए, जो शक्तिशाली वायु द्वारा मथी जा रही विशाल लहरों से तेजयुक्त थी। उस समुद्र के भीतर अर्जुन ने एक अद्भुत महल देखा, जो उसके द्वारा अभी तक देखी गई हर वस्तु से अधिक चमकीला था। इसका सौन्दर्य चमकीले मणियों से जड़े हुए हजारों अलंकृत ख भों के कारण बढ़ गया था।

तस्मिन्महाभोगमनन्तमद्भुतं

सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ।

विभ्राजमानं द्विगुणेक्षणोल्बणं

सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—वहाँ; महा—विशाल; भोगम्—सर्प; अनन्तम्—भगवान् अनन्त को; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; सहस्र—हजार; मूर्धन्य—उनके सिरों पर; फणा—फनों पर; मणि—मणियों की; द्युभिः—तेज की किरणों से; विभ्राजमानम्—चमकते हुए;

द्वि—दो; गुण—गुना; ईक्षण—जिसकी आँखें; उल्बणम्—भयावनी; सित—श्वेत; अचल—पर्वत (कैलास); आभम्—जिसकी तुलना; शिति—गहरा नीला; कण्ठ—जिसकी गर्दन; जिह्वम्—तथा जीभें।

उस स्थान पर विशाल विस्मयकारी अनन्त शेष सर्प था। वह अपने हजारों फनों पर स्थित मणियों से निकलने वाले प्रकाश से चमचमा रहा था, जो कि फनों से दुगुनी भयावनी आँखों से परावर्तित हो रहा था। वह श्वेत कैलास पर्वत की तरह लग रहा था और उसकी गर्दन तथा जीभें गहरे नीले रंग की थीं।

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं
महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं
प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५४ ॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डल-
प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वर्षभुजं सकौस्तुभं
श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालयावृतम् ॥ ५५ ॥
सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदै-
श्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ।
पुष्ट्या श्रीया कीर्त्यजयाखिलार्धिभि-
निषेव्यमानं परमेष्ठिनां पतिम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

ददर्श—(अर्जुन ने) देखा; तत्—वह; भोग—सर्प; सुख—आरामदेह; आसनम्—आसन; विभुम्—सर्वव्यापी; महा-अनुभावम्—सर्वशक्तिमान; पुरुष-उत्तम—भगवान् के; उत्तमम्—परम; सान्द्र—सघन; अम्बुद—बादल; आभम्—के ही समान (उनके नीले वर्ण से); सु—सुन्दर; पिशङ्ग—पीला; वाससम्—जिसका वस्त्र; प्रसन्न—सुहावना; वक्त्रम्—जिसका मुखमण्डल; रुचिर—आकर्षक; आयत—चौड़ी; ईक्षणम्—जिसकी आँखें; महा—विशाल; मणि—मणियों के; व्रात—गुच्छों से; किरीट—मुकुट; कुण्डल—तथा कुण्डलों की; प्रभा—परावर्तित चमक से; परिक्षिप्त—इधर-उधर बिखरी हुई; सहस्र—हजारों; कुन्तलम्—जिसके बालों के गुच्छे; प्रलम्ब—लम्बा; चारु—मनोहर; अष्ट—आठ; भुजम्—भुजाएँ; स—सहित; कौस्तुभम्—कौस्तुभ मणि; श्रीवत्स-लक्ष्मम्—तथा श्रीवत्स का विशिष्ट चिह्न प्रदर्शित करते; वन—जंगली फूलों की; मालया—माला से; आवृतम्—चुम्बित; सुनन्द-नन्द-प्रमुखैः—सुनन्द तथा नन्द इत्यादि; स्व-पार्षदैः—अपने निजी संगियों सहित; चक्र-आदिभिः—चक्र इत्यादि; मूर्ति—स्वरूपों को; धरैः—प्रकट करते हुए; निज—अपने; आयुधैः—हथियारों से; पुष्ट्या श्रीया कीर्ति-अजया—पुष्टि, श्री, कीर्ति तथा अजा नामक अपनी शक्तियों से; अखिल—समस्त; ऋधिभिः—योगशक्तियों से; निषेव्यमानम्—सेवित; परमेष्ठिनम्—ब्रह्माण्ड के शासकों के; पतिम्—प्रधान को।

तत्पश्चात् अर्जुन ने सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान भगवान् महाविष्णु को सर्पशय्या पर सुखपूर्वक बैठे देखा। उनका नील वर्ण घने बादल के रंग का था, वे सुन्दर पीताम्बर पहने थे और उनका मुखमण्डल मनोहर लग रहा था। उनकी चौड़ी आँखें अत्यन्त आकर्षक थीं और उनके आठ लम्बे सुन्दर बाजू थे। उनके बालों के घने गुच्छे उनके मुकुट तथा कुण्डलों को

विभूषित करने वाले बहुमूल्य मणियों के गुच्छों से परावर्तित प्रकाश से सभी ओर से नहाये हुए थे। वे कौस्तुभ मणि, श्रीवत्स चिन्ह तथा जंगली फूलों की माला धारण किये हुए थे। सर्वोच्च ईश्वर की सेवा में सुनन्द तथा नन्द जैसे निजी संगी, उनका चक्र तथा अन्य हथियार साकार होकर उनकी संगिनी शक्तियाँ पुष्टि, श्री, कीर्ति तथा अजा एवं उनकी विविध योगशक्तियाँ थीं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने उल्लेख किया है कि, “भगवान् के अनेक शक्तियाँ हैं और वे भी साकार होकर खड़ी थीं। उनमें से सर्वप्रमुख थीं—पुष्टि, जो कि पोषण की शक्ति है, श्री, जो कि सौन्दर्य की शक्ति है, कीर्ति, जो कि यश की शक्ति है तथा अजा, जो कि भौतिक सृजन की शक्ति है। ये सारी शक्तियाँ भौतिक जगत के प्रशासकों अर्थात् ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु में तथा स्वर्गलोक के राजाओं, इन्द्र, चन्द्र, वरुण तथा सूर्य देव में निहित हैं। दूसरे शब्दों में, ये सारे देवता भगवान् द्वारा कुछ शक्तियों से सम्पन्न किये जाकर भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहते हैं।”

ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो

जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ।

तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभु-

बेद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

ववन्द—सत्कार किया; आत्मानम्—अपना; अनन्तम्—अपने असंख्य रूप में; अच्युतः—अच्युत भगवान् कृष्ण; जिष्णुः—अर्जुन; च—भी; तत्—उसके; दर्शन—दर्शन से; जात—उत्पन्न; साध्वसः—जिसका आश्चर्य; तौ—उन दोनों से; आह—कहा; भूमा—सर्वशक्तिमान ईश्वर (महाविष्णु) ने; परमे-स्थिनाम्—ब्रह्माण्ड के शासकों में से; प्रभुः—स्वामी; बेद्ध-अञ्जली—आदर हेतु हाथ जोड़े हुए; स—सहित; स्मितम्—हँसी; ऊर्जया—शक्तिमान; गिरा—वाणी में।

भगवान् कृष्ण ने इस अनन्त रूप में अपनी ही वन्दना की और अर्जुन ने भी महाविष्णु के दर्शन से चकित होकर उन्हें नमस्कार किया। तत्पश्चात्, जब ये दोनों हाथ जोड़ कर उनके समक्ष खड़े थे, तो ब्रह्माण्ड के समस्त पालकों के परम स्वामी महाविष्णु मुसकाये और अत्यन्त गम्भीर वाणी में उनसे बोले।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक पर निम्नलिखित टिप्पणी की है : जिस तरह भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पूजा के समय अपने ही अर्चाविग्रह को नमस्कार किया था उसी तरह अब उन्होंने अपनी लीला हेतु अपने विष्णु अंश की वन्दना की। भगवान् अनन्त हैं अर्थात् असंख्यरूपों वाले हैं और यह आठ-भुजी रूप उन्हीं में से है। वे अच्युत हैं अर्थात् अपने पद से कभी च्युत नहीं होते,

क्योंकि वे वृन्दावन के ग्वालबाल के रूप में अपनी मानवी लीलाएँ करने में कभी कोई विराम नहीं लेते। अतएव कृष्ण के रूप में अपनी मानवी लीलाओं की विशेष पवित्रता बनाये रखने के लिए ही उन्होंने अपने स्वांश को नमस्कार किया।

कृष्ण तथा अर्जुन के समक्ष महाविष्णु भूमा अर्थात् परम ऐश्वर्यवान के रूप में तथा परमेष्ठिनां प्रभुः अर्थात् करोड़ों ब्रह्माण्डों पर शासन करने वाले असंख्य ब्रह्माओं के स्वामी के रूप में प्रकट हुए। वे श्रीकृष्ण की आन्तरिक इच्छा के अनुसार ही अर्जुन से ऐसी गम्भीर वाणी में बोले कि अर्जुन मोहग्रस्त हो जाय। उनकी हँसी उनके गुप्त विचारों का संकेत दे रही थी जिसे श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने हम सबों के लाभार्थ प्रकट किया है, “हे कृष्ण! यद्यपि मैं आपका अंश हूँ, किन्तु आपकी इच्छानुसार मैं अपनी श्रेष्ठता का वर्णन करूँगा। साथ ही मेरे कथन में सूक्ष्मता से आपके सौन्दर्य, चरित्र तथा शक्ति की सर्वोच्चता निहित रहेगी और यह तथ्य भी रहेगा कि आप ही वह उद्गम हैं, जहाँ से मैं उद्भूत हूँ। देखो न, मेरी चतुराई! मैं अर्जुन के सामने रहस्यात्मक ढंग से अपनी असली पहचान प्रकट कर रहा हूँ, जो आप से अभिन्न है।”

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा

मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ।

कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्

हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

द्विज—ब्राह्मण के; आत्म-जा:—पुत्र; मे—मेरा; युवयो:—तुम दोनों; दिदृक्षुणा—जो देखना चाहता था; मया—मेरे द्वारा; उपनीता:—लाया गया; भुवि—पृथ्वी पर; धर्म—धर्म के नियमों की; गुप्तये—रक्षा के लिए; कला—(मेरे) अंशरूप; अवतीर्णा—अवतरित; अवने:—पृथ्वी के; भर—भारस्वरूप; असुरान्—असुरों को; हत्वा—मार कर; इह—यहाँ; भूय:—फिर; त्वरया—जल्दी से; इतम्—चले आना; अन्ति—निकट; मे—मेरे।

[महाविष्णु ने कहा] : मैं ब्राह्मणों के पुत्रों को यहाँ ले आया था, क्योंकि मैं आप दोनों के दर्शन करना चाह रहा था। आप मेरे अंश हैं, जो धर्म की रक्षा हेतु पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं। ज्योंही आप पृथ्वी के भारस्वरूप असुरों का वध कर चुके आप तुरन्त ही मेरे पास यहाँ वापस आ जायँ।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने व्याख्या की है अर्जुन की प्रशंसा में कहे गये इन शब्दों का गुह्य आशय इस प्रकार है, “तुम दोनों, जो कि अपनी कलाओं अर्थात् निजी शक्तियों के साथ

अवतरित हुए हो पृथ्वी के भारस्वरूप असुरों का वध करने के बाद मेरे पास लौट आओ। तुम इन असुरों को उनकी मुक्ति हेतु मेरे पास यहाँ शीघ्र भेज दो।” श्री हरिवंश तथा श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध में कहा गया है कि क्रमिक मुक्ति का मार्ग इस ब्रह्माण्ड के आठवें आवरण के बाहर स्थित महाविष्णु के धाम के मध्यवर्ती केन्द्र से होकर गुजरता है।

पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ।

धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसङ्ग्रहम् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

पूर्ण—पूर्ण; कामी—सारी इच्छाओं में; अपि—यद्यपि; युवाम्—तुम दोनों; नर-नारायणौ ऋषी—नर तथा नारायण मुनियों के रूप में; धर्मम्—धर्म को; आचरताम्—पूरा करना चाहिए; स्थित्यै—पालन करने के लिए; ऋषभौ—समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ; लोक-सङ्ग्रहम्—सामान्य जनों के लाभ हेतु।

हे महापुरुषों में श्रेष्ठ, यद्यपि आपकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं, किन्तु सामान्य जनों के लाभ हेतु आप नर तथा नारायण मुनियों के रूप में अपने धार्मिक आचरण का आदर्श प्रस्तुत करते रहें।

इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ।

ॐ इत्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥ ६० ॥

न्यवर्तेतां स्वकं धाम सम्प्रहृष्टौ यथागतम् ।

विप्राय ददतुः पुत्रान्यथारूपं यथावयः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों से; आदिष्टौ—आदेश दिये गये; भगवता—भगवान् द्वारा; तौ—वे दोनों; कृष्णौ—दो कृष्ण (कृष्ण तथा अर्जुन); परमे-ष्ठिना—परम धाम के स्वामी द्वारा; ॐ इति—सहमति जताने के लिए ॐ का उच्चारण करते हुए; आनम्य—झुक कर; भूमानम्—परम शक्तिशाली भगवान् को; आदाय—तथा लेकर; द्विज—ब्राह्मण के; दारकान्—पुत्रों को; न्यवर्तेताम्—लौट गये; स्वकम्—अपने; धाम—घर (द्वारका) को; सम्प्रहृष्टौ—प्रसन्न; यथा—जिस तरह; गतम्—वे आये थे; विप्राय—ब्राह्मण को; ददतुः—दे दिया; पुत्रान्—उसके पुत्र; यथा—उसी; रूपम्—स्वरूप में; यथा—उसी; वयः—आयु में।

सर्वोच्च लोक के परमेश्वर द्वारा इस तरह आदेश दिये जाकर कृष्ण तथा अर्जुन ने ॐ का उच्चारण करके अपनी सहमति व्यक्त की और तब सर्वशक्तिमान महाविष्णु को नमन किया। अपने साथ ब्राह्मण के पुत्रों को लेकर वे परम प्रसन्नतापूर्वक उसी मार्ग से द्वारका लौट गये, जिससे होकर वे आये थे। वहाँ उन्होंने ब्राह्मण को उसके पुत्र सौंप दिये, जो वैसे ही शैशव शरीर में थे, जिसमें वे खो गये थे।

निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ।

यत्किञ्चित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

निशाम्य—देखकर; वैष्णवम्—भगवान् विष्णु के; धाम—धाम; पार्थः—अर्जुन ने; परम—परम; विस्मितः—चकित; यत् किञ्चित्—जो भी; पौरुषम्—विशेष शक्ति; पुंसां—जीवों से सम्बद्ध; मेने—निष्कर्ष निकाला; कृष्ण—कृष्ण की; अनुकम्पितम्—प्रदर्शित अनुग्रह।

भगवान् विष्णु के धाम को देखने के बाद अर्जुन पूर्णतया विस्मित थे। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य, जो भी अद्वितीय शक्ति प्रदर्शित करता है, वह कृष्ण की कृपा की अभिव्यक्ति मात्र हो सकती है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अर्जुन के विस्मय का वर्णन इस प्रकार करते हैं: उसने सोचा, “देखो न! यद्यपि मैं मर्त्य हूँ, किन्तु कृष्ण की कृपा से मैंने हर वस्तु के मूल कारण भगवान् का दर्शन किया है।” क्षण-भर बाद उसने पुनः सोचा, “किन्तु भगवान् विष्णु ने यह क्यों कहा कि कृष्ण का दर्शन करने की कामना से ही वे ब्राह्मण के पुत्रों को ले आये थे? भला भगवान् अपने ही अंश का दर्शन करने के लिए क्यों लालायित हैं? यह किसी विशेष क्षणिक परिस्थिति का प्रभाव हो सकता है, किन्तु चूँकि उन्होंने दिदक्षता न कह कर दिदक्षुणा कहा है—*घुणा* प्रत्यय स्थायी गुण का सूचक है, नश्वरता का नहीं—अतः इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वे कृष्ण तथा मुझको देखने के लिए सदैव इच्छुक रहे हैं। यदि यह भी मान लिया जाय, तो फिर उन्होंने द्वारका में कृष्ण का दर्शन क्यों नहीं किया? आखिर, भगवान् महाविष्णु ब्रह्माण्ड के सर्वव्यापक स्रष्टा हैं और वे इस ब्रह्माण्ड को आमलक फल की भाँति अपने हस्त में धारण करते हैं। क्या ऐसा तो नहीं है कि वे द्वारका में कृष्ण का दर्शन नहीं कर पाये, क्योंकि कृष्ण अपनी विशेष अनुमति के बिना किसी को अपना दर्शन नहीं देते?”

और फिर ब्राह्मणों के दयालु स्वामी महाविष्णु वर्षानुवर्ष एक उच्च ब्राह्मण को क्यों कष्ट पहुँचाते रहे? उन्होंने ऐसा असामान्य व्यवहार इसीलिए किया होगा, क्योंकि वे कृष्ण का दर्शन करने की अपनी उत्कट अभिलाषा का परित्याग नहीं कर पाये होंगे। माना कि उन्होंने इसीलिए यह अनुचित कार्य किया होगा, किन्तु उन्होंने ब्राह्मण के पुत्रों का अपहरण करने के लिए अपना दास क्यों नहीं भेजा? उन्हें द्वारका क्यों आना पड़ा? क्या कृष्ण की राजधानी से उन्हें चुरा कर ले जाना इतना कठिन था कि भगवान् विष्णु के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता था? मेरी समझ में उन्होंने भगवान् कृष्ण की पुरी के ब्राह्मण को इसीलिए इतना सताना चाहा था कि कृष्ण इसे सहन न कर सकें, तब वे भगवान्

विष्णु को अपना दर्शन देने की स्वीकृति दे सकेंगे। भगवान् विष्णु ने संतप्त ब्राह्मण को प्रेरित किया कि वह स्वयं जाकर कृष्ण से शिकायत करे। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व पद महाविष्णु के पद से वरिष्ठ है।

इस तरह सोच कर अर्जुन पूर्णतया विस्मित था। उसने भगवान् कृष्ण से पूछा कि क्या यह सही तथ्य है और भगवान् ने जो उत्तर दिया वह *हरिवंश* में इस प्रकार वर्णित है—

मद्दर्शनार्थं ते बाला हतास्तेन महात्मना ।

विप्रार्थम् एष्यते कृष्णो मत्समीपं न चान्यथा ॥

“परमात्मा ने मेरा दर्शन पाने के लिए ही उन बालकों को चुराया था। उनका विश्वास था कि कृष्ण एकमात्र ब्राह्मण का पक्ष लेकर मुझे देखने आयेंगे, अन्यथा नहीं।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से आगे कहा, “किन्तु मैं ब्राह्मण के लिए वहाँ नहीं गया। हे मित्र! मैं तो तुम्हारे प्राण बचाने के लिए वहाँ गया। यदि ब्राह्मण के लिए मैंने ऐसा किया होता, तो उसके पहले बालक के अपहरण के बाद ही मैं वैकुण्ठ पहुँचा होता।”

श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार यद्यपि यह लीला कुरुक्षेत्र युद्ध के पूर्व घटी, किन्तु भगवान् कृष्ण की महिमा की श्रेष्ठता के अन्तर्गत इनको दशम स्कंध के अन्त में फिर से दुहराया गया है।

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ।

बुभुजे विषयान्ग्राम्यानीजे चात्युर्जितैर्मखैः ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ईदृशानि—इस जैसे; अनेकानि—अनेक; वीर्याणि—बहादुरी के कार्य; इह—इस जगत में; प्रदर्शयन्—प्रदर्शित करते हुए; बुभुजे—(भगवान् कृष्ण ने) भोग किया; विषयान्—इन्द्रिय-सुख की वस्तुएँ; ग्राम्यान्—सामान्य; ईजे—पूजा की; च—तथा; अति—अत्यन्त; उर्जितैः—सशक्त; मखैः—वैदिक यज्ञों से।

भगवान् कृष्ण ने इस जगत में ऐसी ही अन्य अनेक लीलाएँ कीं। उन्होंने ऊपर से सामान्य मानव-जीवन के आनन्दों का भोग किया और अत्यन्त सशक्त यज्ञ सम्पन्न किये।

प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु ।

यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवान्श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ

प्रववर्ष—वर्षा की; अखिलान्—समस्त; कामान्—इच्छित वस्तुओं की; प्रजासु—अपनी प्रजा पर; ब्राह्मण-आदिषु—ब्राह्मण इत्यादि पर; यथा-कालम्—उपयुक्त अवसरों पर; यथा एव—उसी तरह से; इन्द्रः—(जिस तरह) इन्द्र; भगवान्—भगवान्; श्रेष्ठ्यम्—अपनी सर्वश्रेष्ठता में; आस्थितः—स्थित।

अपनी सर्वश्रेष्ठता का प्रदर्शन कर चुकने के बाद भगवान् ने उपयुक्त अवसरों पर ब्राह्मणों तथा अपनी प्रजा पर उसी तरह इच्छित वस्तुओं की वर्षा की, जिस तरह इन्द्र जल की वर्षा करता है।

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्याटयित्वार्जुनादिभिः ।

अञ्जसा वर्तयामास धर्म धर्मसुतादिभिः ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

हत्वा—मार कर के; नृपान्—राजाओं को; अधर्मिष्ठान्—अत्यन्त अधार्मिक; घातयित्वा—उनको मरवाकर; अर्जुन-आदिभिः—अर्जुन तथा अन्यो द्वारा; अञ्जसा—सरलतापूर्वक; वर्तयाम् आस—पालन करवाया; धर्मम्—धर्म के सिद्धान्तों को; धर्म-सुत-आदिभिः—(धर्म के पुत्र) युधिष्ठिर तथा अन्यो द्वारा।

अब, जब कि उन्होंने अनेक दुष्ट राजाओं का वध कर दिया था और अन्यो को मारने के लिए अर्जुन जैसे भक्तों को लगा दिया था, तो वे युधिष्ठिर जैसे पवित्र शासकों के माध्यम से धार्मिक सिद्धान्तों के सम्पन्न होने के लिए सरलता से आश्वासन दे सके।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “कृष्ण तथा अर्जुन द्वारा ब्राह्मण-पुत्रों का वापस लाया जाना” नामक नवासिवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।